अखिल भारतीय प्रगतिशील शोषित-दलित वर्ग महासभा द्वारा आयोजित परम श्रद्धेय सन्त रैदास के जन्म स्थान मंडुआडीह, खत्रानीदेवी बालिका विद्यालय वाराणसी में १८ फरवरी ८१ को उनकी ५९८ वीं जयन्ती के शुभ अवसर पर प्रकाशित

*

सन्त रविदास

समतावादी सन्त : मानवतावादी दर्शन

संक्षिप्त वास्तविक अध्ययन

सामाजिक, सांस्कृतिक एवम् आर्थिक क्रांति कर सामाजिक अन्याय और विषमता रहित, शोषण मुक्त नये समाज रचना के संघर्ष में सतत संघर्षशील क्रांतिकारी साथियों को सादर समर्पित

*

शिवमंगल राम वैद्य

अध्यक्ष

अखिल भारतीय प्रगतिशील शोषित-दलित वर्ग महासभा

मंडुआडीह—वाराणसी

मूल्य—एक रुपया

सन्त रैदास

समतावादी सन्त : मानवतावादी दर्शन

सन्त रैदास भारतवर्ष के मध्यकाल के सन्त थे। इनके समयमें समाजको परम्परावाद प्रबलरूप से ग्रसित किए हुए था। परम्परावाद के विरुद्ध समाधान निकालने की चेष्टा पूर्वकालीन समाज सुधारकों और सन्तों ने भी की थी, लेकिन ऊँच-नीच की भावना, परम्परागत रुढ़ियों और सामाजिक अन्याय एवं मानवीय विषमतायें पूर्ववत विद्यमान थीं। अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रोंमें सन्त रैदास को स्वयं परम्परावाद का शिकार होना पड़ रहा था। इसका उन्होंने सतत उचित विरोध किया।

मध्यकाल में लगातार विदेशी आक्रमणकारियोंसे पराजित होते रहने से समाज में हीनता की भावना भर गई थी और आक्रमणकारियों के नवीन सांस्कृतिक शुभ विचारों ने भेदभाव घृणामूलक परम्परावाद को झकझोर कर निर्जीव सा कर दिया था। तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय समाज को जीवित रहने के लिये उसे नये युग के अनुरूप विचार दे सकने की आवश्यकता थी। सन्त रैदास ने तत्कालीन समाजकी पीड़ा को समझा था। उन्होंने व्यवहारिक रूप से उसका समाधान भी निकाल लिया था। उस समाधान को उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से सामान्य जन एवं शोषित दलित बहुसंख्यक जन समुदाय में प्रसारित भी किया। यद्यपि पूर्ववर्ती भक्त और सन्त रामानन्द आदि थे लेकिन रैदास उनमें प्रमुख सन्त हुये जिन्होंने नये युग के अनुरूप समाज को ग्रहण करने योग्य विचारधारा को प्रस्तुत किया जिसे सर्वाधिक स्वीकार किया गया।

मध्यकाल में सामाजिक ढाँचा ही धर्म की भित्ति पर खड़ा था। इसलिये कोई भी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का विचार धर्म से स्वतन्त्र नहीं चल सकता था। इसलिये धार्मिक ढाँचे में परिवर्तन करना आवश्यक था। उस काल में धर्म की ही भाषा में चिन्तन की परम्परा थी। इसलिये सन्त रैदास ने परम्परा से चले आ रहे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उसी भाषा में सामाजिक समता, धर्म और भक्ति के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के समान अधिकार की बात कह कर नये युग की सबसे बड़ी आवश्यकता के पूर्ति की घोषणा की थी।

सांस्कृतिक-धार्मिक क्रान्ति

सन्त रैदास ने धार्मिक क्षेत्र की संकीर्णताओं और परस्पर भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ किया। उन्होंने कर्मकाण्डों के अति और उसके साधन के सभी बाह्य जटिल स्वरूपों की वास्तविक आलोचना की और एक समन्वित विचारधारा दी, जिसे जन मानस ने स्वीकार किया। उन्होंने अभ्यन्तर की विशुद्धि, शारीरिक संयम, चित्त की स्थिरता और सदाचरण

धर्म का ध्येय बतलाया। समदर्शी भाव से रहना, योग साधन और ध्यान समाधि द्वारा सत्य का दर्शन करना और भवबन्धन से विमुक्त होना तथा निर्वाण प्राप्त करने के उपाय में निरन्तर रत रहना स्वाभाविक धर्म बतलाया। उन्होंने सत्य, सरलता, सदाचार, संयम, समता और करुणा-दया का उपदेश दिया।

सन्त रैदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे तथा शून्यतावादी सन्त थे। उन्होंने कहा—

राम जन हूँ न भक्त कहाऊँ, सेवा करूँ न दासा।
गुनी जोग जन कहू न जानूँ, ताते रहूँ उदासा॥
भगत हुआ तै चढ़ै बड़ाई, जोग करूँ जग मानै।
गुनी हुआ तै गुनी जन कहै, गुणी आपकूँ तानै॥
ना मैं ममता मोह न महिमा, यह सब जाहिं बिलाई।
दोजख-भिस्त दोउ सम जानूँ, कोऊ ते तरक है भाई॥
मैं तै ममता देखि सकल जग मैं से मूल गँवाई।
जब मन ममता एक एक मन, तबहि एक है भाई॥
कृष्ण-करीम, राम-हरि-राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद-कतेब, कुरान-पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥
जोई-जोई पूजिय सोइ-सोइ कांची, सहज भाव सत होई।
कहै 'रैदास' मैं ताहिको पूजूँ, जाके ठाँव नाँव नहिं कोई।

वे हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र सबको सम दृष्टि से देखते थे। वे राम-रहीम, वेद कुरान को एक समान मानते थे।

सन्त रैदास : सन्त कबीर

सौभाग्य की बात है, महान धार्मिक आन्दोलन के युग प्रवर्तक सन्त रैदास और सन्त कबीर ये दो सन्त एक ही कोटि के थे, एक ही विचार और एक ही ध्येय के थे। इनका परस्पर प्रेम था और मैत्री भी इस प्रकार की थी। दोनों सन्तों का एक ही समय था और एक ही स्थान पर ब्राह्मणत्व के गढ़ काशी के मंडुआडीह में सन्त रैदास का और उसी के सन्निकट लहतारा में सन्त कबीर का आविर्भाव हुआ था। दोनों सन्तों की सामाजिक स्थिति एक ही सी थी। परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था के अनुसार दोनों सन्त नीच-अछूत चमार और कोरी (जुलाहा) जाति के थे। परम्परागत रुढ़ियों-अन्धविश्वासों के कारण घोर अपमानित-उत्पीड़ित होकर घुटन का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। दोनों सन्तों ने सामाजिक विषमता और अन्याय के विरुद्ध सतत संघर्ष किया। इन सन्तों ने पुरातन पंथी पण्डितों और परम्परावादियों को ललकारा था—

हम कहते आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।
हम कहते सुरझावन हारी, तू कहता अरुझाई रे।
मेरा तेरा मनुवाँ इक कैसे होय रे।

इनका मन की शुद्धता पर अडिग विश्वास था। ये कहते हैं—

'मन चंगा, कठौतिन गंगा।

इन्होंने ब्राह्मण-शूद्र का भेदभाव में विश्वास रखने वाले पंडितों से पूछा—

तू कत ब्राह्मण हम कत शूद्रा, हमरे लोहू तुम्हरे दूधा ।

वे प्रेम और सद्‌व्यवहार विहीन पोथी-पुराण के ज्ञान को प्रमाण मानने वालों को पंडित नहीं मानते थे—वे स्पष्ट कहते थे—

पोथी पढ़ पढ़ जग मुवा पंडित हुआ न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥

वे ऊँची जाति में पैदा होने का अभिमान करने वालों को ऊँच नहीं मानते थे—

ऊँचे कुल क्या जनमिया, जे करणी ऊँच न होइ ।
सोने कलस सुरै भरा, साधू निंद्या सोइ ॥

तोड़ूँ न पाती, पूजूँ न देवा

सन्त रैदास मूर्ति-पूजा का संयत और तर्कपूर्ण विरोध करते हुए मानसी पूजा का उपदेश देते हैं—

राम मैं पूजा कहाँ चढ़ाऊँ ।
फल अरू फूल अनूप न पाऊँ ॥

थन तर दूध सो बछरू जुठारो, पुहुप भँवर, जल मीन, विगारो ।
मलया गिरि बेधियो भुजंगा, विष-अमृत दोनों एक संगा ॥
मनहि पूजा, मनहि धूप, मनहि सेऊँ सहज सरूप ।
पूजा अरचा न जानूँ तेरी, कह 'रैदास' कवन गति मेरी ॥

वे भक्ति भाव से अपने को समर्पित करते हुए कहते हैं—

अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी ।
प्रभु जी, तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग अंग वास समानी ॥
प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चन्द चकोरा ।
प्रभु जी, तुम दीपक हम वाती, जाकी ज्योति बरै दिन राती ॥
प्रभु जी, तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा ।
प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

वे कहते हैं "तोड़ूँ न पाती, पूजूँ न देवा" । वे सहज समाधि से निरंजन ब्रह्म की भक्ति का उपदेश देते हुए धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन की विचार-चिन्तन व्यक्त करते हैं—

अविगत नाथ, निरंजन देवा, मैं क्या जानूँ तुम्हारी सेवा ।
बाधूँ न बन्धन, छाऊँ न छाया, तुमही सेऊँ निरंजन राया ॥
चरण पताल सीस असमाना, सो ठाकुर कैसे संपुट समाना ।
शिव सनकादिक अन्त न पाये, ब्रह्मा खोजत जनम गँवाये ॥
तोड़ूँ न पाती, पूजूँ न देवा, सहज समाधि करूँ हरि सेवा ।
अनन्त कोटि ब्रह्मांड को स्वामी, घट-घट व्यापक अन्तर जामी ॥
बेद-कितेब जेहि अन्त न उसासा, का कथ गावै सन्त रैदासा ।

जन श्रुतियाँ

पारसमणि का त्याग—

सन्त रैदास अपने सन्त स्वभाव के कारण भक्ति और सन्तों की सेवा में लगे रहते थे। उन्हें अपने परिश्रम की कमाई से जो कुछ मिल जाता था वह सब सन्तों की सेवा में लगा देते थे। इसलिये वे अत्यधिक आर्थिक संकट में रहते थे। पुरातन पंथी उनकी दरिद्रता देखकर हँसते थे—

दारिद देखि सब कोई हँसै ऐसी दशा हमारी।
अष्टादश सिद्धि कर तले, सब कृपा तुम्हारी॥
तू जानत मैं कछु नाहीं भव खंडन है राम।
सकल जीव सरनागति तिनि नाहीं कछु भार॥
ऊँच-नीच तुम ते तरे, आलज है संसार।
कह रविदास अकथ कथा, बहु काह कहीजै॥
जैसा तू तैसा तू ही, क्या उपमा दीजै।

उनकी दीनता देख उनके भक्ति से प्रभावित होकर एक साधु ने उनकी आर्थिक सहायता करने के लिये उन्हें पारसमणि देना चाहा और उनके रांपी से स्पर्श कराकर दिखला भी दिया कि वह पारसमणि है। सन्त रैदास उस पारसमणि को लेने से अस्वीकार कर दिया। बाध्य होकर साधु ने उक्त पारस मणि को कपड़े में लपेट कर उन्हें ले लेने की इच्छा व्यक्त कर उनके छप्पर में घुसा कर रख दिया। लगभग एक वर्ष बाद जब साधु लौटे तब उन्होंने उस पारस मणि को अपने रखे हुए स्थान पर यथावत ही पाया उनके परम त्याग पर साधु को अपार हर्ष और आश्चर्य हुआ।

शास्त्रार्थ में विजय—

जब सन्त रैदास की प्रसिद्धि बहुत बढ़ चली तब पुरातन पंथी ब्राह्मणों ने काशी नरेश के दरबार में पुकार मचाई की काशी में एक शूद्र भगवान की पूजा कर रहा है और जनता को उपदेश करता है। उसे ऐसा करने से रोका जाय। काशी नरेश ने सन्त रैदास के पात्रत्व का निर्णय करने के लिये शास्त्रार्थ करने की तीथि निश्चित कर दी। शास्त्रार्थ में जब कोई निर्णय न हो सका तब निश्चय हुआ कि सिंहासन पर रखी मूर्ति आवाहन करने पर जिसकी गोंद में स्वतः आकर बैठ जाय उसी की विजय घोषित कर दी जाय। परम्परा पंथी ब्राह्मणों ने वेद-शास्त्रों के मत्रों का उच्चारण कर भगवान का आवाहन किया लेकिन मूर्ति टस से मस नहीं हुई। भक्ति भाव से सन्त रैदास के आवाहन पर मूर्ति उनके गोंद में आ गई। शर्त के अनुसार नगर में सन्त रैदास की सवारी निकाली गई। लोगों का मत है कि इसी उपलक्ष में सन्त रैदास ने यह पद कहा था—

ऐसी लाल तुझ बिन कौन करै।
गरीब निवाज गुसैयाँ मेरे माथे छत्र धरै।
जाको छूत जगत की लागै ता पै तू ही ढरै॥

नीचहिं ऊँच करै, मेरा गोविन्द काहू ते न डरै ।
नामदेव, कबीर, तिलोचन सधना-सैन तरै ।।
कह 'रविदास' सुनहु रे सन्तहु हरिजिय से सब तरै ।

मूर्ति का गंगा में तैरना—

बहु चर्चित प्रसङ्ग है कि एकबार कुम्भ मेले में पंडितों ने शास्त्रार्थ करने के लिये सन्त रैदास को ललकारा। इन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली। जय-पराजय का निर्णय करने के लिये यह शर्त निश्चित की गई कि प्रत्येक पक्ष अपने-अपने हाथ में शालिग्राम की मूर्ति लेकर गंगा में तैराये। जिसके हाथ की मूर्ति गंगा में तैर उठे वही पक्ष विजयी माना जाय। कहा जाता है कि पण्डितों के हाथ की मूर्ति गङ्गा में डूब गई और सन्त रैदास के हाथ की मूर्ति गङ्गा में तैर उठी। पण्डितों की हार हुई। उस समय भक्ति भाव से सन्त रैदास ने यह पद गाया था–मूरत माहि वसे परमेश्वर तो पानी माहि तिरै रे।

इस प्रकार अनेकों जन-श्रुतियाँ हैं जिनसे सन्त रैदास की महानता सिद्ध होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका भक्ति मार्ग और समतावादी निर्गुण-ब्रह्मवाद का ज्ञान और तर्क तत्कालीन समाज को हीनता और दैन्य से निकालने और सामाजिक समता और न्याय के संघर्ष में महान सफलता प्रदान किया था। परिणाम स्वरूप रुढ़िया ध्वस्त हो रही थीं। समाज सामाजिक-सांस्कृतिक और वौद्धिक क्रांति स्वीकार कर इन्हें सम्मान दे रहा था। मीराबाई जैसी प्रसिद्ध कवियत्री इनकी शिष्या हो गई थीं। सम्पूर्ण भारत इनके धार्मिक क्रांति का क्षेत्र बन गया था।

मूर्ति-पूजा में अनास्था--

वे निर्भीकतापूर्वक पूछते हैं--

पाँड़े, कैसी पूजि रची रे ?

सत्ति बोले साइ सत्तिवादी, झूठी बात बची रे।
जो अविनासी सबका करता, व्याप रह्यौ सब ठौर रे।
पंच तत्त जिन किया पसारा, सो योंही कुछ और रे।।
तू जो कहत हौ यो ही करता, याकू मानिख करै रे।
तारणि सकति सही जे यामैं, तो आपण क्यूँ न तिरै रे।।
अही भरोसे सब जग बूड़ा, सुणि पंडित की बात रे।
याके दरसि कूण गुण छूटा, सब जन आया जात रे।।
याकी सेव सूल नहिं भाजै, कटै न संसय पास रे।
सोचि विचारि देषि या मूरति, यूँ छांडी 'रैदास' रे।।

सन्त रैदास के अराध्य 'राम' निर्गुण, ब्रह्म, सत, सर्व व्यापी 'राम' हैं। वे विष्णु के अवतार राम को नहीं मानते--

भाई रे राम कहा मोहि बताओ ?

राम कहत सब जगत भुलाना, सो यह राम न होई।
करम अकरम सुभासुभ नाहीं कर्ता नाँव सु कोई।।

जा रामहि सबै जग जानत भरम भुलै रे भाई।
आपु आप ते कोइ न जानैं कहै कौन सू जाई॥
निरंजन, निराकार निरलेपी, निरबीकार निसासी।
नस नाड़ी बस सो कहि गावै, हरहर आवै हांसी॥
अबरन, बरन रूप नहिं जाके, का कहि देउँ बड़ाई।
अलख राम जाको ठौर न कतहुँ क्यों न कहौ समुझाई॥
मन "रैदास" उदास ताहिते, करता जग बिसराई।
केवल करता एक सही, सिर 'सत्त राम' तेहि नाई॥

सन्तों का देशः शून्यतावाद—

सन्त रैदास और सन्त कवीर निर्गुण ब्रह्मवादी सन्त थे। ये आवागमन और भगवान के औतार में आस्था नहीं रखते थे। सन्त रैदास निर्वाण प्राप्त कर अमृत-देश चलने को कहते हैं और उनके मित्र सन्त कवीर अमर-देश का सन्देश सुनाते हैं। इनका देश भगवान बुद्ध के मानवतावादी श्रमण-संस्कृति के अरूप-ब्रह्म लोक के समान प्रतीत होता है। गीता में 'इन्हीं लोकों को श्री कृष्ण द्वारा 'परम धाम' कहा गया है।—

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम॥

अर्थात् जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं है, जहाँ चन्द्रमा का प्रकाश भी नहीं हैं, जहाँ अग्नि भी नहीं है और जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता, वही मेरा परम धाम है।

सन्त रैदास उसी लोक अमृत-देश में चलने को कहते हैं—

रे मन, चलु अब अमृत देश, जहां न मिर्तु न सोग कलेस।
गनिका थी किस करमा जोग, पर पुरुष सो रमती भोग॥
निस-वासर दुष्करम कमाई, राम कहत वैकुंठ सिधाई।
नाम देव छीपी जाति के ओछ, जिनको जस गावत है लोक॥
भगत हेत भगती के चेले, अंकमाल लै बीठल मिले।
कोटि जग्य जो कोई करे, राम नाम सम सोउ न निस्तरे॥
निर्गुन को गुन देखो भाई, देही सहित कबीर सिधाई।
लोक-वेद सब करि खंडौति, आयो सरन करै दंडौति॥
जन 'रैदास' निरंजन राई, तोही मों अब रहइ समाई।

वौद्ध कालीन महान सामाजिक क्रान्ति के वाद महान धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन के युग प्रवर्तक सन्त रैदास के हम सहरी मित्र सन्त कबीर अमर-देश का सन्देश कहते हैं—

जहवाँ से आये अमर वह देसवा।
बाम्हन नाहीं, क्षत्री नाहीं सूद न बयसवा॥
मोगल औ पठान नाहीं सैयद न सेखवा।
जोगी नाहीं जंगम नाहीं, मुनी-दरवेसवा॥

आदि-अन्त-मध्य नाहीं, काल न कलेसवा।
पानी नाहीं, पवनौ नाहीं, ना धरती आकसवा।
चाँद औ सूरज नाहीं न रैन दिवसवा॥
ब्रह्मा नाहीं, विसनू नाहीं, नाहीं महेसवा।
आदि-ज्योति-शक्ति नाहीं गौरी गनेसवा॥
कहैं कबीर तहाँ से ही हम लाये एक संदेसवा।
सार-शब्द को गहि के साधो, चलो वही देसवा॥ जहवाँ॥

इस प्रकार अमृत-देश और अमर-देश का वर्णन कर दोनों सन्तो ने नवमानवतावदी समाज रचना का समतावादी दर्शन तत्कालीन समाज को दिया और सामाजिक-सांस्कृतिक और वौद्धिक क्रान्ति का नेतृत्व निर्भीक होकर सफलता पूर्वक किया।—

शोषण-मुक्त समाज की रचना—

वे भली भाँति जानते थे कि जाति-वर्ण-सम्प्रदाय रहित समतावादी नये समाज को सुखी समुन्नत बनाने के लिये शोषितदलित, दीन-अभावग्रस्त बहुसंख्यक जन समुदाय को आर्थिक शोषण से भी मुक्त होना आवश्यक है। इस लिये उन सन्तोंने धर्म के भाषा में ही आर्थिक क्षेत्र में भी साम्यवादी दर्शन का बास्ततिक नारा दिया। वे अपरिग्रह वादी थे। आवश्यकता से अधिक धन संचय करने के वे विरोधी थे-आर्थिक विषमता का अन्त करने निमित्त वे कहते थे—

उदर समाता अन्न ले, तनहिं समाता चीर।
अधिका संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर॥
साईं इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधुन भूखा जाय॥

सन्त रैदास और सन्त कबीर दोनो युग प्रवर्तक महान क्रान्ति कारी सन्तों का दर्शन नव मानवतावादी, समतावादी नया जीवन दर्शन है। उनका दर्शन जातिवाद, सामन्तवाद, वर्ण और वर्ग भेद तथा सामाजिक-आर्थिक विषमता ओंका उन्मूलन करने में, सामाजिक अन्याय मिटाने में, नये युग के अनुरू समर्थ है। उनका दर्शन शोषण मुक्त, विषमता रहित नये समाज रचना का उपदेश देता है। नये युग की माँग है कि उनके उपदेश का पालन कर अपने कर्तव्य का उचित निवहि करें।

शिवमंगल राम वैद्य

अध्यक्ष

अखिल भारतीय प्रगतिशील शोषित-दलित वर्ग महासभा,
मंडुआडीह, वाराणसी